International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 7 Issue 09, September 2017,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

शिक्षा के क्षेत्र में संगीत–शिक्षण की उपादेयता

डॉ. संगीता
एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग (वादन)
देव समाज कॉलेज फॉर वूमेन, फिरोजपुर शहर (पंजाब)

संक्षेपिका

प्रत्येक कला के लिए प्रतिभा का होना एक अत्यावश्यक गुण माना गया है, तद्यपि उसके साथ सशिक्षा का होना भी अनिवार्य है। शिक्षा के क्षेत्र में संगीतकला को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । यह क्षेत्र संगीत–शिक्षा के अभाव में अपूर्ण ही माना जाएगा क्योंकि शिक्षा जहाँ मानव के सर्वांगीण विकास के लिए उत्तरदायी है, वहीं मानवीय व्यक्तित्व का एक पक्ष, जो इससे पूर्णतया अस्पर्शित रह जाता है, वह है– 'भावनात्मक पक्ष'। संगीत का सीधा सम्बन्ध मानव–हृदय से होने के कारण, उसमें संगीत–शिक्षण द्वारा सात्त्विक भावों के उद्रेक के साथ–साथ, शारीरिक विकास, बौद्धिक विकास, भावनात्मक विकास तथा सहनशीलता, श्रद्धाभाव, विनय, दृढ़ इच्छाशक्ति एवं पारस्परिक सौहार्द इत्यादि गुणों का विकास होता है। यदि संगीत का आश्रय लेकर शिक्षण कार्य किया जाए तो उसका प्रभाव द्विगुणित हो जाता है। शिक्षा में शिक्षा के क्षेत्र में संगीत–शिक्षण की उपादेयता विषय पर विवेचना– इस शोध–प्रपत्र का उद्देश्य है।

मुख्य शब्द : शिक्षा, संगीत, कला, संस्कृति, प्रतिभा, सर्वांगीण

भूमिका

संगीत में स्वर–साधना द्वारा मानव–मनोमस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जिससे शिक्षार्थी स्वयं को बाह्य जगत् से अल्पावधि के लिए विच्छिन्न पाकर असीम आनन्द का अनुभव करता है । इसी आनन्द को सौन्दर्यशास्त्रियों द्वारा 'दिव्य रस' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। संगीत–शिक्षा में शिक्षण–पद्धति के सिद्धान्तों एवं मूल्यों के निर्धारण के साथ–साथ, इसकी दिव्यता, आध्यात्मिकता, दार्शनिकता एवं सौन्दर्य पक्ष को भी ध्यान में रखना आवश्यक है, जिससे संगीत का शुचि एवं शुद्ध स्वरूप बना रहे। संगीत–शिक्षण प्रक्रिया में इन विशिष्ट केन्द्रों के प्रति सजगता, कला को प्रत्येक दृष्टि से अलंकृत करती है, जिससे विद्यार्थियों का संगीत के प्रति आकर्षण निरन्तर बना रहता है।

संगीत कला की उपादेयता

संगीत कला का अध्ययन केवल शिक्षार्थी हेतु ही नहीं अपितु समस्त प्राणियों की अन्तः प्रवत्तियों, उनके ज्ञान एवं बुद्धि में वृद्धि के लिए आवश्यक है। मानव के सम्यक् विकास, श्रेष्ठ चरित्र–निर्माण, व्यक्तित्व विकास, आध्यात्मिकता, अनुशासन एवं सौहार्द–भाव के विकासार्थ ही संगीत को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। संगीत का अध्ययन मानव जीवन को शिष्ट, पवित्र, सौन्दर्यपूर्ण, विनम्र, कोमल, सौम्य एवं शुद्ध स्वरूप प्रदान करता है। संगीत–शिक्षा की प्राप्ति से हुई परिपक्वता के कारण, मानव उचित अवसरों पर संगीतायोजन कर, अनेक दृष्टिकोणों से संगीत का मूल्यांकन कर उसे जन–मनोरंजन, आत्मिक रंजन अथवा समाज के नैतिक उत्कर्ष का साधन बनाता है। शिक्षा, संस्कृति एवं सभ्यता के मूल स्वरूप को सुरक्षित रखती है। समाज द्वारा अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने तथा कलात्मक उपलब्धियों एवं संगीतिक सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रतीक स्वरूप, संगीत को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। संगीत को व्यवस्थित, विकसित व परिष्कृत करने की दृष्टि से ही संगीत की शिक्षण व्यवस्था महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है।

उद्देश्य

संगीत–शिक्षा के उद्देश्य के विषय में कहा जाता है, कि 'इससे सौन्दर्यानुभूतिक शक्ति का विकास, हृदय की शिक्षा, अतीन्द्रीय सुख एवं शान्ति की प्राप्ति, निर्विकार संयम की प्रशिक्षा, विचारों में

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 7 Issue 09, September 2017,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

प्रभावोत्पादकता, रचना–शक्ति का प्रकाशन, सभ्यता एवं संस्कृति का संरक्षण, विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास तथा शारीरिक स्वास्थ्य पर सुप्रभाव पड़ता है। संगीत द्वारा आत्मिक आनन्द मिलता है, जो कि बालक के व्यक्तित्त्व को निखारता है।

संगीत के त्रिविध रूप कठोर साधना से सिद्ध होते हैं। गायन में श्वास, वादन में अंग–विशेष तथा नृत्य में सम्पूर्ण शरीर के संचालन का एक नियमित एवं संयमित स्वरूप होता है, जो शारीरिक दृष्टि से भी साधक पर श्रेष्ठ प्रभाव डालते हैं। आज के भौतिकतावादी युग में संगीत मानसिक तनाव से मुक्त कर, मनुष्य को सृजनात्मक कार्यों की दिशा में प्रेरित कर, अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करता है। मनोरंजन के साधन के साथ–साथ संगीत व्यक्तित्व विकास का भी एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है।

संगीत–शिक्षण की पुरातनता

भारतीय संगीत का इतिहास, मानव के विकासवादी इतिहास जितना पुरातन है। संगीत–शिक्षण की परिपाटी प्राचीन काल से ही चली आ रही हैं। संस्कृति एवं सभ्यता के परिवर्तनशील स्वरूप की ही भांति, संगीत शिक्षण प्रणाली का स्वरूप भी परिवर्तनशील रहा है। प्राचीन काल से ही संगीत कला–शिक्षण में गुरु–शिष्य परम्परा दृष्टिगोचर होती है, जो शिक्षण पद्धति की एक अनुपम देन है। प्राचीनकाल में संगीत–शिक्षण में गुरु का शिष्य को विद्या प्रदान करना और शिष्य द्वारा शिक्षा ग्रहण करने की परम्परा ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था। अपने विकास क्रम में शिष्य ही गुरु बन जाता था। इस प्रकार विद्या की परम्परा उत्तरोत्तर आगे बढ़ती रही। इसी परम्परा के क्रम में स्वय ज्ञान भी विकसित होता है। ज्ञान के नए क्षेत्र, क्षितिज, विषय–सिद्धान्त और रहस्य प्रकाशित होते हैं, शिष्य गुरुओं के ज्ञान का संवर्धन करते हैं एक विकासशील परम्परा बनकर, ज्ञान समाज की सांस्कृतिक निधि बनाता है। विद्या का आदान–प्रदान गुरु–शिष्य के माध्यम से संचालित होना ही भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं में से एक है।

पचीन–कालीन संगीत–शिक्षण व्यवस्था

वैदिक काल से ही भारतीय संगीत वैदिक तथा लौकिक संगीत की धाराओं के रूप में प्रवाहित होकर शिक्षण–प्रक्रिया के माध्यम से परिपुष्ट होता रहा है। ऋषियों द्वारा अपने पुत्रों अथवा शिष्यों को दी गई साम–गान की शिक्षा के रूप में ही संगीत की शिक्षण–प्रक्रिया पल्लवित होती रही। केवल भारत में ही नहीं अपितु प्राचीन यूनान में भी ललित कलाओं को नैतिक उत्कर्ष का साधन मानकर, सिपाहियों के लिए भी सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त आवश्यक माना गया। वैदिककालीन संगीत पर दृष्टिपात करने से ही स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि सामवेद की सहस्रों शाखाओं एवं गान–प्रकारों का संकलन संहिताओं एवं गान–ग्रन्थों में उपलब्ध है तथापि इनका वास्तविक स्वरूप गुरु–शिष्य परम्परा के माध्यम से ही सुरक्षित रहा। स्वरों के क्रियात्मक ज्ञानार्थ, गुरु के मुखकमल से प्राप्त किया गया ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ माना गया। संगीत–शिक्षा के प्राचीन स्वरूप एवं शिक्षण के सिद्धान्तों सम्बन्धी विवरण ग्रन्थ के रूप में एक स्थान पर प्राप्य नहीं है तथापि विकीर्ण सूत्रों को सुगुम्फित करने से तत्कालीन स्थिति के विषय में सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

महाकाव्य काल में भी महर्षि वाल्मीकि द्वारा लव–कुश को तथा अर्जुन द्वारा महाराज विराट की पुत्री उत्तरा को संगीत–शिक्षा देने के प्रसंग उपलब्ध होते हैं। गान्धर्व–विद्या की प्राप्ति हेतु सुस्वरता को आवश्यक गुण माना गया था। रामायण काल में साम एवं गान्धर्व–दोनो ही संगीत–प्रकारों का पर्याप्त प्रचलन था। सामगान जहाँ वैदिक परम्परा के अन्तर्गत समाहित था, वहीं गान्धर्व लौकिक के। कलाओं के अध्ययन के लिए छः से सोलह वर्ष की आयु उपयुक्त मानी जाती थी। 16वें वर्ष अनन्तर, यौवनारम्भ होने से कण्ठ स्वर में स्वरभंग उत्पन्न हो जाता है, इस दृष्टि से बाल्यावस्था का यही कालखण्ड संगीत–कला के अध्ययन के लिए उपयुक्त माना गया है। प्राचीनकाल का पाठ्यक्रम वर्ण–व्यवस्था, जीवन–दर्शन तथा विशेष लक्ष्य–सन्धान से नियमित हुआ करता था। संगीत का अन्तर्भाव किसी न किसी रूप में इन पाठ्यक्रमों में हुआ करता था, चाहे वह सामगान के रूप में हो अथवा गान्धर्व कला के अध्ययन के रूप में। गान्धर्व के सामान्य शिक्षक के लिए वैकल्पिक विषय के रूप में विद्या मन्दिरों में व्यवस्था थी, किन्तु व्यावसायिक अध्ययन के लिए संगीतशाला जैसे विशिष्ट कला–केंद्रों में जाकर विशेषतः गुरुजनों से शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती थी।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 7 Issue 09, September 2017,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

महाभारत काल में भी वैदिक एवं लौकिक–दोनों सगीत–प्रणालियाँ प्रचार में थीं। संगीत की त्रिपुटी–गायन, वादन एवं नृत्य की सुचारू शिक्षा का प्रबन्ध राजसी परिवारों एवं जनसामान्य दोनों के लिए ही था। महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' में नृत्य सम्वन्धी चर्चा, नृत्य–शिक्षण की उपयुक्त विधि एवं उत्तम प्रदर्शन के लिए ध्यातव्य तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त, कला–आस्वादन विषयक जानकारी तथा श्रेष्ठ शिक्षक सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है।

राजपूत काल अथवा उससे पूर्व के काल में, संगीत के राज्याश्रित होने पर भी विशिष्ट राजसी संगीतशालाओं के अतिरिक्त सार्वजनिक संगीत–शिक्षण केंद्रों का कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता।

मध्यकालीन संगीत–शिक्षण व्यवस्था

मध्ययुग में 12वीं–15वीं शताब्दी के मध्य, भारतीय संगीत सभ्य समाज में सम्मानित स्थान तो ग्रहण नहीं कर सका, परन्तु अलाउद्दीन खिलजी के दरबारी संगीतज्ञ अमीर खुसरो का संगीत के प्रचार–प्रसार में विशेष योगदान रहा। 15वीं शताब्दी में मुस्लिम बादशाहों के वर्चस्व के कारण, शाही–दरबारों में नियुक्त संगीतज्ञों को संगीत–साधना करने का पूर्ण अवसर तो मिला, जिससे जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की एवं ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने भी संगीत कला को प्रश्रय दिया, परन्तु अकबर के काल को ही संगीत के प्रचार–प्रसार एवं शिक्षण की दृष्टि से स्वर्ण काल माना जाता है। संगीत–शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ उल्लेख 'तानसेन' तथा उनके गुरु 'स्वामी हरिदास' के रूप में प्राप्य है, जो गुरु–शिष्य परम्परा के उत्तम निदर्शन है । परन्तु प्राचीन काल में जहाँ संगीत–शिक्षा का व्यवस्थित रूप था, संगीतशालाएँ थीं, गुरु–शिष्य परम्परा का आदर्श विद्यामान था, वही मध्यकाल में संगीत–शिक्षा की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं थी। दो सभ्यताओं के आदशों व मान्यताओं में अन्तर होने के कारण साधारण रूप से संगीत केवल मनोरंजन की वस्तु ही माना जाने लगा था व इसी कारण सभ्य समाज के लिए हेय बन गया था।

यद्यपि कतिपय संगीत–ग्रन्थों की रचना केवल व्यक्तिगत प्रयत्नों से संभव हुई तथा संगीत का क्रियात्मक स्वरूप गुरुमुख पद्धति के कारण एक से दूसरे व्यक्ति तक प्रवाहित हुआ, तथापि मध्यकाल के सम्पूर्ण विवरण में कहीं भी संगीत की व्यवस्थित शिक्षण–प्रणाली के संकेत नहीं मिलते। इस समय, संगीत को विलासिता का साधन माना जाने के कारण, इसकी शिक्षा का राज्य की ओर से कोई प्रबन्ध नहीं किया गया था। शिक्षण की केवल व्यक्तिगत गुरु–शिष्य परम्परा ही अस्तित्व में थी। संगीत–शिक्षण केंद्रों के अभाव में यह कला केवल राजमहलों एवं शाही दरबारों तक ही सीमित रह गई थी। व्यक्तिगत प्रयत्नों, मौखिक आदान–प्रदान के कारण ही यह पद्धति आगामी काल में घरानों के माध्यम से पुनर्जीवन प्राप्त कर सकी।

हिन्दुस्तानी संगीत को जीवायमान रखने का श्रेय गुरु–शिष्य परम्परा को ही दिया जाना श्रेष्ठ है, जिन्होंने अनथक मेहनत, लगन एवं श्रद्धा भाव से गुरु द्वारा प्रदत्त शिक्षा को मूल रूप में ही सहेजकर रखा । शिक्षण की इस परम्परा के अभाव में, संगीत–कला की अमूल्य निधि प्राचीन शैली एवं स्वरूप को जीवित नहीं रखा जा सकता था । संगीत में उपादेयता की दृष्टि से, घरानेदार शिक्षण–प्रक्रिया में कुछ गुण भी थे और दोष भी तथापि यह कथन अतिशयोक्ति न होगी कि इन घरानों के संरक्षण में ही संगीतज्ञों ने प्रगतिशील संगीत का निर्माण कर, उसे उन्नति के मार्ग पर अग्रसर किया । यही कारण है कि आधुनिक काल में सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन होने तथा विचारधारा एवं शिक्षण–सुविधाओं में वृद्धि हाने पर भी, विशिष्ट घराने से सम्बद्ध कलाकार का नाम लेते ही उसके गुणी संगीतज्ञ होने का भाव स्वतः मन में जागृत हो जाता है।

आधुनिक कालीन संगीत शिक्षण–व्यवस्था

आधुनिक काल में विदेशी जातियों–जनजातियों के भारतागमन से तथा भारतीय शिक्षण–प्रणाली को अधिक व्यापक बनाने की दृष्टि से विभिन्न विद्यालयों की स्थापना की गई। इस समय विशेष रूप से अंग्रेजों ने शिक्षा–पद्धति को एक स्थिर, व्यवस्थित एवं सर्वत्र सुलभ स्वरूप तो दिया, परन्तु संगीत शिक्षण प्रणाली का व्यापक प्रचार–प्रसार भी इसे पुनः दार्शनिक एवं आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने में असफल सिद्ध हुआ, जिससे यह कला जीविकापार्जन का साधन मात्र बनकर रह गई। भौतिकतावादी मशीनी युग में, गुरु–शिष्य के मध्य शताब्दियों पुरातन श्रद्धा, लगन एवं विश्वास तथा

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 7 Issue 09, September 2017,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

समर्पण का भाव लुप्त प्रायः हो गया, क्योंकि अंग्रेजों का उद्देश्य पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के उत्थान के लिए भारतीयों को एक साधन के रूप में प्रयोग करना ही था। तद्यपि कतिपय अंग्रेजों ने भारतीयों को शिक्षा एवं संस्कृति के द्वारा समृद्ध करने का प्रयत्न किया, जिनमें सर विलियम जोन्स, कैप्टन विलर्ड, एच. ब्लाकमैन, स्टेनली लेनपूल इत्यादि इस दृष्टि से उल्लेखनीय नाम हैं।

परिवर्तित सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में वैज्ञानिक संसाधनों की उपस्थिति से घरानों को बनाए रख पाना एक दुष्कर कार्य था, जिससे संगीत–शिक्षण की संस्थागत शिक्षण प्रणाली प्रचार में आई । संगीत की यह शिक्षण–प्रणाली पाश्चात्य शिक्षण–पद्धति से प्रभावित हाकर शनैः–शनैः विकासावस्था को प्राप्त कर रही है।

वर्तमान काल में भी शिक्षण संस्थाएँ एवं विश्वविद्यालयीन पद्धति संगीत के ज्ञान को उचित रूप में प्रदान करने का श्रेष्ठ साधन सिद्ध हुई हैं, क्योंकि इनमें न केवल संगीत के अध्ययन–अध्यापन का कार्य एक सुनिश्चित एवं व्यवस्थित क्रम से हो सकता है, अपितु यह जनसामान्य तक संगीत कला को पहुँचाने का उत्तम माध्यम भी हैं। विद्यालयों–महाविद्यालयों में इसे अन्य विषयों के साथ ही सम्मिलित करने से संगीतकला के क्षेत्र में अत्यन्त वृद्धि हुई है। आज शिक्षा मन्त्रालय, प्रान्तीय शिक्षा विभागों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा संगीत को एक विषय के रूप में मान्यता प्राप्त है। यही संगीतकला जो अब तक घराना–परमपरा की दृढ़ श्रखलाओं में आबद्ध एवं जनसामान्य के लिए दुष्प्राप्य थी, अब प्रत्येक विद्यालय–महाविद्यालय में छात्रवर्ग के मध्य अत्यन्त लोकप्रिय है। संस्थागत संगीत–शिक्षण–प्रणाली के अस्तित्व में आन से संगीत–शिक्षार्थियों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है। केवल संगीत विषय की ही शिक्षा देने वाले विद्यालय भी आज यत्नपूर्वक कार्य कर रहे हैं, जिनमें खैरागढ़ का इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, बनारस का म्यूजिक कॉलेज, लखनऊ का भातखण्डे कॉलेज व प्रयाग संगीत समिति और गन्धर्व महाविद्यालय मण्डल प्रमुख है। संगीत–कला के विकास की दृष्टि से यह वांछनीय है कि प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी प्रतिभा के अनुरूप ही शिक्षा दी जाए। "रचनाकार (Composer), संगीत–शिक्षक (Teacher), संगीत शास्त्रकार (Musicologist), संगीत–समीक्षक (Critic), कलाकार (Artist), निर्देशक (Director), संशोधक (Research Scholar), संगीत–विषय रसिकता, भाषण करने और लिखने की योग्यता (Connoisseur) या अन्य कोई भी उद्देश्य पहले से सामने रखा जाए और उसी के अनुसार अनुकूल शिक्षा विद्यार्थी को दी जाए। उपयुक्त संयोजन एवं व्यवस्था से संगीतकला, शिक्षा के माध्यम से प्रगति के नवीन द्वार उद्घाटित कर सकती है।

निष्कर्ष

संगीत के मूल तत्त्व ही मानव–जीवन के संचालक तत्त्व हैं। जीवन में संगीत के स्थान की इस महती सचेतनता के अभाव में दी गई संगीत–शिक्षा, यदि विद्यार्थियों को एक सार्थकता की अनुभूति की ओर प्ररित न कर सके तो उसका कोई लाभ नहीं। आधुनिक शिक्षाविदों का यह मानना है कि बुद्धि–सम्बन्धी विषयों यथा–गणित, भौतिकी इत्यादि के साथ–साथ भावनात्मक विकास सम्बन्धी विषय भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाने अत्यावश्यक हैं, क्योंकि इनके अभाव में शिक्षा एकांगो एवं अपूर्ण है।

वर्तमान काल में भी, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 प्रमुख शिक्षाविदों ने कलात्मक विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान देने तथा सांस्कृतिक गतिविधियों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पर बल दिया है, जिससे शिक्षार्थियों के मानसिक, बौद्धिक एवं सांस्कृतिक विकास की गुणात्मक एवं गणनात्मक वृद्धि सम्भव हो सके।

सन्दर्भ पुस्तक सूची

1. पुष्पेन्द्र शर्मा : संगीत की उच्चस्तरीय शिक्षण प्रणाली– एक समीक्षात्मक अध्ययन, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1992
2. ज्योति खन्ना : संगीत शिक्षण, एम.टी. पब्लिकेशन्ज़, लुधियाना, 1989
3. शोभना शाह : संगीत शिक्षण प्रणाली, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
4. इन्दु दवे : संगीत अध्यापन, कल्याणमल एण्ड सन्ज, जयपुर, 1971

5. अमरेश चन्द्र चौबे : संगीत की संस्थागत शिक्षण प्रणाली, कृष्णा ब्रदर्ज़, अजमेर, 1988
6. डॉ. सुरेशगोपाल श्रीखण्डे : हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन की शिक्षा प्रणाली, अभिषेक पब्लिकेशन्ज़, चण्डीगढ़, 1993
7. A Critique of Hindustani Music and Music Education : Dr. S.S. Awasthi, Dhanpat Rai & Sons, Jullundur City.
8. शंकरदयाल शर्मा : शिक्षा के आयाम, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1995
9. नवरत्न स्वरूप सक्सेना : शिक्षा सिद्धात, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1985